लुहार अमृत लाल नागजी

बनाम

दोशी जयन्तीलाल जेठालाल व अन्य

(न्यायाधिपति पी.बी.गजेन्द्रगडकर, के.एन.वांचू एवं के.सी.दास गुप्ता)

हिंदू विधि-पिता का पूर्ववर्ती ऋण-पुत्रों का पवित्र दायित्व भुगतान करने के लिए-दायित्व।

एक हिंदू पिता को सोने-चांदी का सट्टा लगाते हुए भारी नुकसान हुआ और बंधक पर उधार लेकर इसकी भरपाई करने की कोशिश की। बंधकदार ने एक डिक्री प्राप्त की और बंधक रखी गई संपत्ति को बिक्री द्वारा निष्पादित करने की मांग की। पुत्र एवं पत्नी द्वारा मुकदमा इस घोषणा हेतु किया गया कि पूर्ववर्ती ऋण अनैतिक (अव्यवहारिक) था, जिस कारण डिक्री बाध्यकारी नहीं थी। विचारण न्यायालय ने उनके पक्ष में फैसला सुनाया और अपील पर जिला न्यायाधीश ने उक्त फैसले की पुष्टि की। द्वितीय अपील पर उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वादी को न केवल यह साबित करना है कि पूर्ववर्ती ऋण अनैतिक था, बल्कि यह भी कि बंधककर्ता को ऋण के उक्त स्वरूप की जानकारी थी ओर चूँकि उन्होंने उस दायित्व को निभाने के लिए कोई सबूत नहीं दिया था, इसलिए वे

डिक्री के हकदार नहीं थे। वादीगण विशेष अनुमति द्वारा उक्त अपील पेश की गई

अभिनिर्धारित किया *गया कि उच्च न्यायालय ने कानून के बारे में सही दृष्टिकोण अपनाया और अपील विफल होनी चाहिए।*

सूरज बंसी कोएर के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित सिद्धांतों की शुद्धता का परीक्षण करने का कोई भी प्रयास, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया कि विशुद्ध रूप से प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के प्रकाश में एक सदी के तीन चोथाई से अधिक समय से इस क्षैत्र को धारण कर रहे हैं, अब न केवल निर्णित अनुसरण के सिद्धांत से प्रभावित होंगे, जो अनिवार्य रूप से अमल में आना चाहिए, बल्कि अक्षम ओर व्यर्थ भी होगा।

सूरज बंसी कोएर बनाम श्यो प्रोशाद सिंह, (1879) एल.आर.6 आई.ए.88 और बृज नारायण बनाम मंगला प्रसाद (1923) एल.आर. 51 आई.ए.129 लागू।

उन दोनों मामलों में निर्धारित सिद्धांत पिता के पूर्वर्ती ऋण के भुगतान के लिए किए गए हस्तांतरण ओर उसके खिलाफ पारित डक्री के निष्पादन में किए गए हस्तांतरण के बीच कोई अंतर नहीं करते हैं ओर दोनों मामलों में बेटों को न केवल पूर्ववर्ती ऋण के अनैतिक चरित्र को

साबित करना चाहिए, बल्कि विमुख व्यक्ति के ज्ञान को भी साबित करना चाहिए।

निर्णय विधि पर विचार किया गया।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील सं.121/1956

सिविल द्वितीय अपील संख्या 82 में पूर्व सौराष्ट्र उच्च न्यायालय के 29 जनवरी 1953 के फैसले और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपील, फैसले से उत्पन्न और 1952 की सिविल अपील संख्या 4 में जिला न्यायाधीश, राजकोट की 29 अप्रैल, 1952 की डिक्री।

अपीलकर्ता की ओर से डब्ल्यू.एस.बारलिंगे एवं ए.जी. रत्नपारखी। प्रत्यर्थी सं.1 की ओर के लिए एम.एल जैन।

4 मई, 1960, न्यायालय का फैसला न्यायाधिपति गजेन्द्रगडकर द्वारा सुनाया गया- विशेष अनुमति द्वारा यह अपील हिंदू कानून का एक दिलचस्प सवाल उठाती है।यदि कोई हिंदू पुत्र अपने पिता द्वारा अपने पूर्ववर्ती ऋण का भुगतान करने के लिए किए गए हस्तांतरण को चुनौती देना चाहता है, तो क्या उसके लिए न केवल यह साबित करना आवश्यक है कि उक्त पूर्ववर्ती ऋण अनैतिक था, बल्कि यह भी साबित करना आवश्यक है कि विमुख व्यक्ति को उक्त ऋण के अनैतिक चरित्र की जानकारी थी?उच्च न्यायालय ने माना है कि बेटे को ऋण के अनैतिक

चरित्र और विमुख व्यक्ति को इसकी सूचना दोनों को साबित करना होगा,वर्तमान अपील में अपीलकर्ताओं द्वारा उस दृष्टिकोण की सत्यता को हमारे सामने चुनौती दी गई है।

अपीलकर्ता दो भाई, अमृतलाल और मोहनलाल नागजी, और उनकी मां, बाई जैकल अर्जन हैं।तीन अपीलकर्ता और प्रतिवादी 2, नागजी गोविंद, अपीलकर्ता 1 और 2 के पिता और अपीलकर्ता 3 के पति, एक अविभाजित हिंदू परिवार का गठन करते हैं।प्रतिवादी 2 ने संयुक्त परिवार की संपत्ति के संबंध में प्रतिवादी 1, जयंतीलाल दोशी के पक्ष में 2000/-रुपये के लिए एक बंधक विलेख निष्पादित किया।यह दस्तावेज़ 5 फरवरी, 1946 को निष्पादित किया गया था। 1950 में, प्रतिवादी 1 ने अपने बंधक पर प्रतिवादी 2 पर मुकदमा दायर किया, बिक्री के लिए एक डिक्री प्राप्त की और बंधक संपत्ति की बिक्री के लिए निष्पादन के लिए एक आवेदन दायर किया।तदनुसार बिक्री आयोजित करने का आदेश दिया गया था।उस स्तर पर अपीलकर्ताओं ने 30 अप्रैल, 1951 को वर्तमान मुकदमा दायर किया और एक घोषणा का दावा किया कि प्रतिवादी 1 के पक्ष में और प्रतिवादी 2 के खिलाफ बंधक मुकदमे (सिविल सूट संख्या 589/1949) में पारित डिक्री बंधक रखी गई संपत्ति में अपीलकर्ताओं के 3/4 हिस्से के संबंध में बाध्यकारी नहीं थी। उन्होंने प्रतिवादी 1 को उनके हिस्से के संबंध में उक्त डिक्री को क्रियान्वित करने से रोकने के लिए एक स्थायी निषेधाज्ञा भी

मांगी।इस मुकदमे में बंधककर्ता, प्रतिवादी 2 को एक पक्ष के रूप में शामिल किया गया था।

अपनी याचिका में अपीलकर्ताओं ने कहा है कि प्रतिवादी 2 ने सोने और चांदी में सट्टा लगाया था और इस तरह उसने बड़ी मात्रा में धन खो दिया था, जिसकी भरपाई उसने कई लेनदारों से उधार लेकर की थी।ऐसे लेनदारों में से एक धरसी शामजी थे,जिन्हें 2000/-रुपये प्रतिवादी 2 द्वारा देय थे। अपीलकर्ताओं के अनुसार रुपये के उक्त ऋण के भुगतान के लिए प्रतिवादी 2 द्वारा आक्षेपित बंधक निष्पादित किया गया था।2000/-रुपये का उक्त ऋण अनैतिक या अव्यवहारिक था, इसलिए अपीलकर्ता इससे बाध्य नहीं थे।

दावे का प्रतिवादी 1 और प्रतिवादी 2 दोनों ने विरोध किया, जिन्होंने दलील दी कि बंधक उन ऋणों के भुगतान के लिए निष्पादित किया गया था जो परिवार पर बाध्यकारी थे और अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए अनैतिक ऋणों की दलील में कोई बल नहीं था।उनका यह भी आरोप था कि बंधक रखी गई संपत्ति अविभाजित हिंदू परिवार की संपत्ति नहीं थी।

इन दलीलों पर विचारण न्यायालय द्वारा उचित विवाद्यक विरचित किए गए।यह पाया गया कि बंधक रखी गई संपत्ति परिवार की सहदायिक संपत्ति थी एवं विचाराधीन बंधक-विलेख एक ऋण का भुगतान करने के लिए निष्पादित किया गया था, जो अनैतिक था और परिणामस्वरूप बंधक

अपीलकर्ताओं के लिए बाध्यकारी नहीं था। विचारण न्यायालय के अनुसार सट्टा लेनदेन में उसके द्वारा किए गए नुकसान का भुगतान करने के लिए प्रतिवादी 2 द्वारा अनुबंधित ऋण को अवैध और अनैतिक उद्देश्यों के लिए अनुबंधित किया गया माना जाना चाहिए और इस प्रकार उक्त ऋण के भुगतान के लिए बाद में हस्तांतरण अपीलकर्ताओं को बाध्य नहीं कर सकता है। विचारण न्यायालय ने यह भी देखाही कि प्रतिवादी 1 ने यह दिखाहीने के लिए साक्ष्य देने के लिए गवाह कटघरे में कदम नहीं रखाही था कि उसने प्रतिवादी द्वारा देय किसी भी पूर्ववर्ती ऋण के अस्तित्व के बारे में कोई पूछताछ की थी। परिणामस्वरूप अपीलकर्ताओं द्वारा दायर मुकदमे का फैसला सुनाया गया। उक्त डिक्री के विरूद्ध प्रतिवादी को प्राथमिकता दी गयी। जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील की गई, लेकिन जिला न्यायाधीश विचारण न्यायालय द्वारा किए गए सभी निष्कर्षों से सहमत हुए और उक्त अपील को खाहीरिज कर दिया। इसके बाद प्रतिवादी द्वितीय अपील में मामले को सौराष्ट्र उच्च न्यायालय के समक्ष ले गया। उच्च न्यायालय इस बात से सहमत था कि बंधक रखी गई संपत्ति संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति थी और प्रतिवादी 1 ने लेनदेन में प्रवेश करने से पहले अपनी ओर से कोई जांच साबित करने का कोई प्रयास नहीं किया था। उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार करना आवश्यक नहीं समझा कि धारसी शामजी को देय पूर्ववर्ती ऋण, जिसके पुनर्भुगतान के लिए आक्षेपित बंधकबनाया गया था, कानूनन अनैतिक या अवैध था, यह इस धारणा

पर अपील के निस्तारण हेतु अग्रसर हुआ कि उक्त ऋण अवैध या अनैतिक था।उस धारणा पर उच्च न्यायालय ने हिंदू कानून के भौतिक सिद्धांतों पर विचार किया और माना कि अपीलकर्ताओं को न केवल यह साबित करना था कि पूर्ववर्ती ऋण अनैतिक या अवैध था, बल्कि यह भी कि प्रतिवादी 1 को ऋण के उक्त चरित्र की सूचना थीऔर चूंकि अपीलकर्ताओं ने इस दायित्व से मुक्त होने के लिए कोई सबूत नहीं दिया था, इसलिए वे प्रतिवादी 1 के खिलाफ किसी भी राहत का दावा करने के हकदार नहीं थे। इस निष्कर्ष पर प्रतिवादी द्वारा की गई द्वितीय अपील की अनुमति दी गई थी और अपीलकर्ताओं द्वारा दायर मुकदमे को खाहीरिज करने का आदेश दिया गया था।इसी डिक्री के विरुद्ध अपीलकर्ता विशेष अनुमति द्वारा इस न्यायालय में आये हैं।

अपीलकर्ताओं की ओर से डॉ. बारलिंगे ने आग्रह किया है कि हिंदू कानून के सिद्धांत उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को उचित नहीं ठहराते हैं कि अपीलकर्ताओं को पूर्ववर्ती ऋण के अनैतिक चरित्र के बारे में विमुख व्यक्ति के ज्ञान को साबित करना होगा।वह मानते हैं कि इस बिंदु पर न्यायिक निर्णय उनके तर्क के विरुद्ध हैं,लेकिन उनका तर्क है कि इस विषय पर निर्णय विधि की कमी है और उनके द्वारा उठाए गए बिंदु के महत्व को ध्यान में रखते हुए, हमें न्यायिक निर्णयों के संदर्भ के बजाय ग्रंथों के संदर्भ में वास्तविक कानूनी स्थिति की जांच करनी चाहिए।उक्त

के संबंध में हम हिंदू विधि के संदर्भित प्रावधानों के आधार पर अपीलकर्ता के तर्क को वर्णित करें।

पवित्र दायित्व का सिद्धांत जिसके तहत बेटों को अपने पिता के ऋण का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है, पूरी तरह से धार्मिक विचारों पर आधारित है,ऐसा माना जाता है कि यदि किसी व्यक्ति का कर्ज नहीं चुकाया जाता है और वह ऋणग्रस्त अवस्था में मर जाता है तो उसकी आत्मा को बुरे परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं और उसे ऐसे बुरे परिणामों से बचाना उसके पुत्रों का कर्तव्य है।इस प्रकार सिद्धांत का आधार आध्यात्मिक है और इसका एकमात्र उद्देश्य पिता को आध्यात्मिक लाभ प्रदान करना है।इसका उद्देश्य किसी भी दृष्टि से ऋणदाता को लाभ पहुंचाना नहीं है। जैसा *सत नारायण बनाम दास(1)* में प्रिवी काउंसिल द्वारा देखाही गया है, यह सिद्धांत "तीसरे पक्ष की सुरक्षा के लिए किसी आवश्यकता पर आधारित नहीं था, बल्कि अपने पिता का ऋण चुकाते देखना पुत्रों का पवित्र दायित्व है।" पर आधारित था।

यह सिद्धांत अनिवार्य रूप से यह मानता है कि पिता का ऋण, जिसे चुकाना पुत्रों का पवित्र दायित्व है, व्यवहारिक होना चाहिए।यदि ऋण व्यवहारिक नहीं हैं या अव्यवहारिक है, तो पवित्र दायित्व के सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता है।आम तौर पर न्यायिक निर्णयों में प्रयुक्त होने वाली अभिव्यक्ति 'अव्यवाहरिक' उषांस के पाठ पर आधारित है जिसे

मिताक्षरा ने *याज्ञवल्क्य(1)* के प्रासंगिक पाठ पर टिप्पणी करते समय उद्धृत किया है।उषांस के अनुसार जो भी व्यवहारिक नहीं है उसका भुगतान पुत्र को नहीं करना पड़ता है।'न व्यवहारिकम्' उषांस द्वारा प्रयुक्त शब्द हैं, और सकारात्मक रूप में कहें तो उनका अर्थ है 'व्यवहारिक'।कोलब्रुक ने इन शब्दों का अनुवाद इस प्रकार किया है, जिसका अर्थ है "अच्छी नैतिकता के प्रतिकूल किसी कारण के लिए ऋण"।कई फैसलों में इन शब्दों की अलग-अलग व्याख्या हुई है.कभी-कभी उनका अर्थ "एक ऐसा ऋण जो एक सभ्य और सम्मानित व्यक्ति के रूप में पिता को नहीं उठाना चाहिए था" के रूप में प्रस्तुत किया जाता है: *दरबार खाहीचर बनाम खाहीचर हंसर(2)*;या, "वैध, सामान्य या प्रथागत नहीं": *छकौरी महतों बनाम गंगा प्रसाद(3)* या "कानूनी तर्कों द्वारा मान्य नहीं है और जिस पर लेनदार के पक्ष में न्याय की अदालत में कोई अधिकार स्थापित नहीं किया जा सकता है": *वेणुगोपाल नायडु बनाम रामनाथन चेट्टी(4)*।लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि *हेमराज बनाम खेमचंद(5)* में, प्रिवी काउंसिल ने, कुल मिलाकर, कोलब्रुक के अनुवाद को उषांस द्वारा इस्तेमाल किए गए शब्द की वास्तविक व्याख्या के निकटतम दृष्टिकोण बनाने के रूप में मानना पसंद किया है;शब्द का सटीक अर्थ जो भी हो, यह स्पष्ट है कि उक्त विवरण का उत्तर देने वाला ऋण ऐसा ऋण नहीं है जिसे पुत्र चुकाने के लिए बाध्य है, और इसलिए जैसे ही यह दिखाहीया

जाता है कि ऋण अनैतिक है, पवित्रता का सिद्धांत ऐसे ऋण के समर्थन में दायित्व लागू नहीं किया जा सकता।

इस संबंध में डॉ. बारलिंगे द्वारा यह भी आग्रह किया गया है कि ऋण के अनैतिक स्वरूप को सिद्ध करने का दायित्व पुत्रों पर पहले से ही बहुत भारी है।उक्त दायित्व के निर्वहन में पुत्रों को न केवल यह साबित करना होगा कि उनके पिता आरोपित ऋण से अनुबंधित व्यक्ति असाधारण या अनैतिक जीवन जीता है, लेकिन उन्हें पिता की अनैतिकता और आरोपित ऋण के बीच सीधा संबंध स्थापित करने की आवश्यकता होती है।यदि बेटों को यह साबित करने की आवश्यकता देकर यह दायित्व और भी कठिन बना दिया जाता है कि विमुख व्यक्ति को पूर्ववर्ती ऋण के अनैतिक चरित्र का ज्ञान था, तो यह वास्तव में बेटों के कार्य को असंभव बना देगा, और बेटों के पवित्र दायित्व के सिद्धांत की अंतर्निहित भावना के बावजूद वास्तव में उन्हें अपने पिता के अनैतिक या अपवित्र पूर्ववर्ती ऋण का भुगतान करने के लिए मजबूर किया जाएगा। इसीलिए जिस नियम के लिए आवश्यक है कि पुत्रों को विमुख व्यक्ति का ज्ञान साबित करना चाहिए, वह पवित्र दायित्व के सिद्धांत के आधार पर असंगत है।इस प्रकार प्रस्तुत तर्क निस्संदेह सरल और प्रथम दृष्टया आकर्षक है।जिस प्रश्न पर हमें विचार करना है वह यह है कि क्या हमें ग्रंथों की जांच करने और हिंदू कानून के मूल प्रावधानों के वास्तविक प्रभाव को निर्धारित करने का प्रयास करना

चाहिए, इस तथ्य के बावजूद कि उठाया गया मुद्दा न्यायिक निर्णयों द्वारा आच्छादित किया गया है, जिन पर कई बार विचार किया गया है। इस विषय पर सही कानून बनाने में वर्षों लगे।

इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले प्रासंगिक न्यायिक निर्णयों पर विचार करना आवश्यक है।1874 में, प्रिवी काउंसिल को *गिरधारी लाल बनाम कंट्रू लाल एवं मुद्दुन ठाकुर बनाम कंट्रू लाल(1)*। मामले में हिंदू कानून की इस शाखाही पर विचार करने का अवसर मिला।ऐसा प्रतीत होता है कि कंट्रू लाल और उनके नाबालिग चचेरे भाई ने अपने परिवार से संबंधित कुछ संपत्तियों पर कब्ज़ा पाने के लिए एक मुकदमा दायर किया था, जो क्रमशः निजी बिक्री और अदालती नीलामी में बेची गई थीं।निजी बिक्री 28 जुलाई, 1856 को हुई थी और विलेख दोनों वादी के पिताओं द्वारा निष्पादित किया गया था।वादी का मामला यह था कि वे विवादित लेनदेन से बंधे नहीं थे।प्रधान सदर अमीन ने मुकदमे को खाहीरिज कर दिया लेकिन उच्च न्यायालय ने उस फैसले को रद्द कर दिया और कंट्रू लाल को उसके पिता के हिस्से का आधा हिस्सा दे दिया।दूसरे वादी द्वारा किया गया दावा इस आधार पर खाहीरिज कर दिया गया कि विवादित लेनदेन के समय उसका जन्म नहीं हुआ था।कंट्रू लाल के पक्ष में पारित डिक्री को विमुख व्यक्ति ने प्रिवी काउंसिल के समक्ष चुनौती दी थी।साक्ष्य से पता चला कि जिस समय विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था, कंट्रू लाल के पिता

भिखाहीरी लाल के खिलाफ उनके लेनदार के पक्ष में निष्पादित बांड पर एक डिक्री प्राप्त की गई थी और उनके खिलाफ एक निष्पादन जारी किया गया था, जिस पर संपत्ति में अधिकार और हिस्सा था। संलग्न किया गया।इसलिए भिखाहीरी लाल का कर्ज़ चुकाने और फाँसी से छुटकारा पाने के लिए धन जुटाना आवश्यक समझा गया।इन तथ्यों पर प्रिवी काउंसिल को इस बात पर विचार करना था कि क्या कंट्रू लाल का बिक्री लेनदेन के बाध्यकारी चरित्र को चुनौती देना उचित था।इस मुद्दे से निपटने के लिए प्रिवी काउंसिल ने उस नियम को मंजूरी दे दी, जिसे बोर्ड ने *हनुमान प्रसाद पांडे बनाम मुसुम्मात बाबूई मुनराज कूनवेरी* के मामले में पहले ही लागू कर दिया था। हिंदू कानून के नियम को लॉर्ड जस्टिस नाइट ब्रूस ने इस प्रकार बताया था। वह निर्णय: "पिता के ऋण को चुकाने के दायित्व से पुत्र की स्वतंत्रता का संबंध ऋण की प्रकृति से है, न कि संपत्ति की प्रकृति से, चाहे वह पैतृक हो या ऋण के निर्माता द्वारा अर्जित की गई हो"।तब प्रिवी काउंसिल ने माना कि यदि पिता का ऋण अनैतिक उद्देश्य के लिए अनुबंधित किया गया था तो पुत्र पर इसे चुकाने का कोई पवित्र दायित्व नहीं होगा,लेकिन बोर्ड के समक्ष ऐसा मामला नहीं था।यह नहीं दिखाहीया गया था कि जिस बाॅन्ड पर डिक्री प्राप्त की गई थी वह अनैतिक उद्देश्य के लिए थाऔर दूसरी ओर यह दर्शाया गया कि बोन्ड पर कार्यवाही करते हुए एक डिक्री पारित की गई है और यह दिखाहीने के लिए कुछ भी नहीं है कि ऋण अनैतिकता से दूषित था।प्रिवी काउंसिल ने यह भी देखाही कि कंट्रू

लाल ने संभवत: पिता के उकसाने पर कार्रवाई की थी और साथ ही हम कह सकते हैं कि इस तरह के मुकदमे कई बार किए गए।इन तथ्यों पर प्रिवी काउंसिल ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को रद्द कर दिया और माना कि कंटू लाल किसी भी राहत के हकदार नहीं थे।

इस प्रकार यह देखाही जाएगा कि यह निर्णय केवल यह दर्शाता है कि भुगतान के लिए पिता द्वारा कोई भी हस्तांतरण किया गया है। उसके पूर्ववर्ती ऋण और उक्त पूर्ववर्ती ऋण को अनैतिक नहीं दिखाहीया गया है, पुत्र हस्तांतरण की वैधता को चुनौती नहीं दे सकता है।चूंकि पूर्ववर्ती ऋण को अनैतिक नहीं दिखाहीया गया था इसलिए इस पर कोई प्रश्न नहीं उठता। यदि पूर्ववर्ती ऋण वास्तव में अनैतिक दिखाहीया गया है तो उस जिम्मेदारी की प्रकृति क्या होगी जिसे बेटे को निभाना होगा। नीलामी बिक्री के संबंध में, जिसे वादी ने उस मुकदमे में चुनौती दी थी, प्रिवी काउंसिल ने माना कि निष्पादन के तहत एक क्रेता निश्चित रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए डिक्री से परे जाने के लिए बाध्य नहीं है कि क्या अदालत डिक्री देने में सही थी या निष्पादन के तहत संपत्ति को बिक्री के लिए रख दिया गया था।साक्ष्य से पता चला कि नीलामी क्रेता ने ईमानदारी से काम किया, पूछताछ की और संतुष्ट था कि डिक्री उचित रूप से पारित की गई थी और मूल्यवान प्रतिफल के भुगतान पर नीलामी बिक्री पर संपत्ति खरीदी।इन तथ्यों पर यह माना गया कि वादी किसी भी राहत के हकदार नहीं थे।इस

निर्णय का संबंध उस स्थिति से भी नहीं था जो पूर्ववर्ती ऋण वास्तव में अनैतिक साबित होने पर उत्पन्न होती।

यह प्रश्न *सूरज बंसी कोएर बनाम श्योप्रोशाद सिंह(1)* में प्रिवी काउंसिल के समक्ष उठा।उस मामले में मिताक्षरा द्वारा शासित एक हिंदू के खिलाफ एक बंधक बाॅन्ड पर पैसे के लिए एक पक्षीय डिक्री प्राप्त की गई थी, बंधक रखी गई संपत्ति पैतृक अचल संपत्ति थी।उक्त डिक्री के तहत बंधक रखी गई संपत्ति कुर्क कर ली गई थी और डिक्री धारक ने उक्त संपत्ति को बिक्री के लिए लाने की मांग की थी।हालाँकि, निष्पादन बिक्री से पहले, निर्णित-ऋणी की मृत्यु हो गई और उसके शिशु पुत्रों और सह-वारिसों ने आपत्तियों की याचिका दायर की,लेकिन उन्हें एक नियमित वाद के रूप में संदर्भित किया गया था।उन्होंने जो मुकदमा दायर किया उसमें उन्होंने ऋण की बाध्यकारी प्रकृति को चुनौती दी और निष्पादन ऋणदाता और खरीददारों के खिलाफ उचित राहत का दावा किया।प्रिवी काउंसिल ने माना कि निर्णित ऋणी और निष्पादन लेनदार के नवजात पुत्रों के बीच न तो पुत्र और न ही उनको प्राप्त पैतृक अचल संपत्ति पिता के ऋण के लिए उत्तरदायी थी,और जहां तक खरीददारों का संबंध है, यह माना गया कि, चूंकि उन्होंने वादी द्वारा आपत्तियां दायर किए जाने के बाद खरीदारी की थी, इसलिए यह माना जाना चाहिए कि उन्हें इसकी वास्तविक या रचनात्मक सूचना थी और इसलिए उन्होंने वादी के दावे की जानकारी के साथ

खरीदारी की थी और उस मुकदमे के परिणाम के अधीन जिसके लिए उन्हें संदर्भित किया गया था। अधीनस्थ न्यायाधीश ने दावे पर फैसला सुनाया, बंधक बाॅन्ड, उस पर डिक्री और उसकी निष्पादन बिक्री को रद्द कर दिया। इस निर्णय से विमुख व्यक्ति के हिस्से के संबंध में बंधक, डिक्री और निष्पादन बिक्री को भी अलग रखाही गया था।हालाँकि, उच्च न्यायालय ने उस फैसले को पलट दिया और मुकदमा खाहीरिज कर दिया।प्रिवी काउंसिल ने वादी द्वारा की गई अपील को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया और माना कि वादी के शेयर बंधक विलेख, डिक्री या निष्पादन बिक्री से बंधे नहीं थे।इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उस मामले में प्रिवी काउंसिल ने माना कि पूर्ववर्ती ऋण अनैतिक उद्देश्यों के लिए था और नीलामी खरीदार को इसकी सूचना थी।लेकिन उसके समक्ष उठाए गए कानून के प्रश्न से निपटने में प्रिवी काउंसिल को हिंदू कानून के प्रासंगिक प्रावधानों और उन पर असर डालने वाले निर्णयों की जांच करने का अवसर मिला।प्रिवी काउंसिल द्वारा जिन निर्णयों पर विचार किया गया उनमें *कंट्टू लाल(1)* का मामला भी शामिल था।सर जेम्स कोल्विल, जिन्होंने बोर्ड का निर्णय सुनाया, ने *कंट्टू लाल(1)* के मामले का उल्लेख किया और कहा कि "यह मामला, जो इस न्यायाधिकरण का निर्णय है, निस्संदेह इन प्रस्तावों के लिए एक प्रमाण है: पहला वह जहां संयुक्त पैतृक संपत्ति एक संयुक्त परिवार से चली गई है, या तो पूर्ववृत्त ऋण के विचार में पिता द्वारा निष्पादित एक हस्तांतरण के तहत, या पूर्ववृत्त ऋण का भुगतान करने के लिए धन जुटाने के लिए, या

पिता के लिए एक डिक्री के निष्पादन में बिक्री के तहत। ऋण, उसके बेटे, अपने पिता के ऋण का भुगतान करने के अपने कर्तव्य के कारण, उस संपत्ति को पुनर्प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक कि वे यह नहीं दिखाहीते कि ऋण अनैतिक उद्देश्यों के लिए अनुबंधित किए गए थे, और खरीददारों को सूचना थी कि वे इस तरह अनुबंधित थे, और दूसरा, कि निष्पादन बिक्री में खरीददार, मुकदमे से अनजान होने के कारण, यदि उन्होंने ध्यान नहीं दिया है कि ऋण इस प्रकार अनुबंधित किए गए थे, तो वे कार्यवाही में प्रथमदृष्टया दिखाही देने वाली चीज़ों से परे पूछताछ करने के लिए बाध्य नहीं हैं। *कंट्र लाल(1)* के मामले से निकाले गए इस फैसले में जो पहला प्रस्ताव दिया गया है वह स्पष्ट एवं असंदिग्ध है। जहां पैतृक संपत्ति को या तो पूर्व ऋण के विचार में पिता द्वारा निष्पादित एक हस्तांतरण के तहत, या पूर्व ऋण का भुगतान करने के लिए धन जुटाने के लिए, या डिक्री के निष्पादन में बिक्री के तहत हस्तांतरित किया गया है। पिता के ऋण के लिए एक डिक्री में, पुत्रों को न केवल यह साबित करना होता है कि पूर्ववर्ती ऋण अनैतिक थे, बल्कि यह भी कि क्रेताओं को यह पता था कि उनके साथ ऐसा अनुबंध किया गया था। सम्मान के साथ, यह तर्क के लिए खुला है कि क्या ये दोनों प्रस्ताव अनिवार्य रूप से कंट्रू लाल के मामले में प्रिवी काउंसिल के पहले के फैसले से उत्पन्न हुए हैं, लेकिन 1879 से जब यह प्रस्ताव इस प्रकार प्रतिपादित किया गया था, तब से इसे स्पष्ट रूप से

भारत की सभी न्यायालयों द्वारा इस बिंदु पर सही कथन के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

सत नारायण बनाम बिहारी लाल(2) के मामले में इस प्रश्न पर विचार करते समय कि क्या दिवालिया हिंदू पिता और उसके बेटों के संयुक्त परिवार की संपत्ति, पिता के दिवालिया घोषित होने के आधार पर आधिकारिक समनुदेशिती में निहित नहीं हो जाती है। सर जॉन एज ने संयोगवश इन दो प्रस्तावों को अनुमोदन के साथ संदर्भित किया है।हमारे सामने ऐसे किसी निर्णय का हवाला नहीं दिया गया है जहां इन प्रस्तावों की सत्यता पर कभी संदेह किया गया हो या सवाल उठाया गया हो।

इस संबंध में यह याद करना प्रासंगिक हो सकता है कि प्रिवी काउंसिल ने *कंट्र लाल(1)* भट्टाचार्य के मामले में अपना फैसला सुनाने के तुरंत बाद, "संयुक्त हिंदू परिवार से संबंधित कानून" पर अपने टैगोर लॉ व्याख्यान में (पृष्ठ 549, 550) उक्त निर्णय की जांच की और पाया कि "पेशे में कई लोग सोचते हैं कि इस मामले ने हिंदू परिवार की संस्था को उपसंहारक प्रहार दिया है कि इसने उस संस्था की आवश्यक विशेषता को खत्म कर दिया है तथा इसने पिता को पैतृक संपत्ति से निपटने में अपने बेटों के नियंत्रण से स्वतंत्र, जिसे हमेशा एक सामान्य निधि के रूप में देखाही जाता था जो कि बेटों के लिए उतना ही स्वामित्व रखती थी जितना कि पिता के लिए।इस प्रकार निर्णय पर आश्चर्य व्यक्त करते

हुए श्री भट्टाचार्य ने यह भी कहा कि "सबूत का भार बेटे पर डालने से उनके सामने एक ऐसी कठिनाई उत्पन्न हो गई है जो व्यावहारिक रूप से असहनीय है"।फिर भी, वह इस पर ध्यान देने से नहीं चूके।तथ्य यह है कि प्रिवी काउंसिल द्वारा अपनाए गए सिद्धांत का प्रचार-प्रसार मिताक्षरा जिलों में व्याप्त गंभीर दुरुपयोग को समाप्त करने के लिए लगभग एक आवश्यकता बन गया था,और उन्होंने कहा है कि "उन स्थानों पर परिवारों के पिता अच्छी तरह से जानते थे कि पैतृक संपत्ति उनके स्वयं के दावों के खिलाफ सुरक्षित थी। लेनदारों ने पैसे उधार देने के लिए निर्दोष व्यक्तियों को फंसाने की लगभग एक नियमित प्रणाली स्थापित की और जब कोई डिक्री प्राप्त की गई और संपत्तियां कुर्क की गईं तो वे लेनदार के दावों का मुकाबला करने के लिए अपने बेटों को आगे कर देते थे।" लेखक के अनुसार पुनर्जीवन हिंदू कानून के भूले हुए नियम की प्रिवी काउंसिल ने व्यवस्थित धोखाहीधड़ी की विद्रोही प्रथा पर उपसंहारक प्रहार से निपटने के लिए समय पर हस्तक्षेप के रूप में कार्य किया। ये अवलोकन संयोगवश *कंट्रू लाल(1)* के मामले में निर्णय की उत्पत्ति की व्याख्या करते हैं और हमें एक स्पष्ट विचार देते हैं उस रिष्टि के बारे में जिसे प्रिवी काउंसिल उक्त सिद्धांतों को निर्धारित करके जांचना चाहती थी।

जब हम इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं तो हम *बृज नारायण बनाम मंगलाप्रसाद(2)* केमामले में प्रिवी काउंसिल के फैसले का उल्लेख कर

सकते हैं, जहां अविभाजित संपत्ति को बांधने के लिए प्रबंधक और पिता की शक्तियों के बारे में विवादास्पद प्रश्न अंततः था। प्रिवी काउंसिल द्वारा हल किया गया, और लॉर्ड डुनेडिन, जिन्होंने बोर्ड का निर्णय सुनाया, ने इन शब्दों में इस संबंध में पांच प्रस्ताव रखे:

(1) संयुक्त अविभाजित संपत्ति का प्रबंध सदस्य आवश्यकता के उद्देश्यों को छोड़कर प्रबंधक के लिए संपत्ति को अलग नहीं कर सकता है या उस पर बोझ नहीं डाल सकता है; लेकिन

(2) यदि वह पिता है और अन्य सदस्य पुत्र हैं, तो वह कर्ज लेकर,

जब तक कि यह किसी अनैतिक उद्देश्य के लिए न हो तो उस कर्ज के भुगतान के लिए डिक्री पर निष्पादन की कार्यवाही में संपत्ति को खुला

रख सकता है।

(3) यदि वह बंधक द्वारा संपत्ति पर बोझ डालने का इरादा रखता है, तो जब तक वह बंधक पिछले ऋण का भुगतान नहीं करता है, यह संपत्ति को बाध्य नहीं करेगा।

(4) पूर्ववर्ती ऋण का अर्थ वास्तव में और साथ ही समय में भी

पूर्ववर्ती है, यानी कि ऋण वास्तव में स्वतंत्र होना चाहिए और लेनदेन का हिस्सा नहीं होना चाहिए।

(5) ऐसा कोई नियम नहीं है कि यह परिणाम इस सवाल से प्रभावित होता है कि पिता, जिसने ऋण का अनुबंध किया था या संपत्ति पर बोझ डाला था,जीवित है या मृत है।

प्रस्ताव 2, 3 और 4, जिनसे हम वर्तमान अपील में विचारित हैं, दर्शाते हैं कि पिता द्वारा अपने पूर्ववर्ती ऋण के भुगतान के लिए बनाया गया एक बंधक, अपने पुत्रों को बाँधेगा,ताकि, यदि बेटे बंधक की वैधता को चुनौती देना चाहते हैं तो उन्हें न केवल यह दिखाहीना होगा कि पूर्ववर्ती ऋण अनैतिक था, बल्कि यह भी कि विमुख व्यक्ति को उक्त ऋण के अनैतिक चरित्र की जानकारी थी।यह *सूरज बंसी कोएर(1)* के मामले में दिए गए पहले प्रस्ताव का परिणाम होगा।

अब प्रिवी काउंसिल द्वारा *बृज नारायण(2)* के मामले के साथ-साथ *सूरज बंसी कोएर(1)* के मामले में दिए गए प्रस्ताव प्राचीन हिंदू ग्रंथों के आधार पर कुछ आपत्तियों के लिए खुले हो सकते हैं।जैसा कि डॉ. केन ने बताया है, "पूर्ववर्ती ऋण" शब्द के लिए जो पहली बार सूरज बंसी कोयर के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा उपयोग किया गया था (1) संस्कृत प्रमाणों में इसके अनुरूप कुछ भी नहीं है, और यह भेद किया गया है बृज नारायण के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा (2) पिता द्वारा साधारण व्यक्तिगत धन ऋण और बंधक द्वारा प्राप्त ऋण के बीच भी प्राचीन ग्रंथों और टिप्पणियों (3) द्वारा समान रूप से वहन नहीं किया गया है।तो हम

उस प्रश्न पर वापस लौटते हैं जिसके साथ हमने शुरुआत की थी: क्या इस स्तर पर इस प्रश्न पर पूरी तरह से प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के प्रकाश में विचार करना समीचीन होगा, भले ही *सूरज बंसी कोएर(1)* के मामले में निर्णय आने में तीन चौथाई सदी से अधिक समय लग गया हो, का स्पष्ट रूप से बिना किसी संदेह या असहमति के पालन किया गया है।

हमने इस मामले पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और हम अपीलकर्ताओं के पक्ष में इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार नहीं हैं।इस चरित्र के मामलों में सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, निर्णित विधि का सिद्धांत अनिवार्य रूप से लागू होना चाहिए।कई वर्षों से हिंदू परिवारों की अचल संपत्ति के लेन-देन होते रहे हैं और इस समझ के आधार पर विदेशी लोगों के पक्ष में स्वामित्व पारित किया गया है कि *सूरज बंसी कोएर(1)* के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित कानून के प्रस्ताव सही ढंग से प्रतिनिधित्व करते हैं। इस संबंध में हिंदू कानून के तहत सही स्थिति, हमें लगता है, इतने लंबे समय के अंतराल के बाद इस प्रश्न को फिर से खोलना अनुचित होगा।

इसके अलावा आज यह तय करना आसान नहीं होगा कि प्रासंगिक संस्कृत ग्रंथ वास्तव में इसमें क्या प्रदान करते हैं।यह सर्वविदित है कि यद्यपि स्मृति ग्रंथों को हिंदू कानून के स्रोतों में गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है, हिंदू कानून के विकास में सदाचार या अनुमोदित आचरण, जो एक

अन्य स्रोत है, ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदू कानून की विभिन्न शाखाहीऔ और उप-शाखाहीओ का अस्तित्व स्पष्ट रूप से इस तथ्य को सामने लाता है कि युगों के दौरान हिंदू कानून ने समय-समय पर विभिन्न स्थानों में अलग-अलग रीति-रिवाजों और प्रथाओं को अवशोषित करने के लिए बदलाव किए हैं। यह हिंदू कानून के विकास की एक उल्लेखनीय विशेषता है कि, निर्माण के नियमों को कुशलतापूर्वक अपनाकर, टिप्पणीकारों ने स्मृति ग्रंथों के अक्षरों और विभिन्न क्षेत्रों और अलग-अलग समय में मौजूदा रीति-रिवाजों और उपयोगों के बीच की दूरी को पाटने का सफलतापूर्वक प्रयास किया। इस प्रक्रिया को ब्रिटिश शासन के तहत रोक दिया गया था, लेकिन अगर आज हमें यह तय करना है कि जिस बिंदु पर हम चिंतित हैं, उस पर हिंदू कानून ग्रंथों के तहत वास्तविक स्थिति क्या है, तो विभिन्न ग्रंथों को समेटना और एक निश्चित निष्कर्ष पर आना बहुत मुश्किल होगा। कानून की इस शाखाही में न्यायिक निर्णयों द्वारा कई विचार पेश किए गए हैं जो अब प्रशासित होने के कारण हिंदू कानून का एक अभिन्न अंग बन गए हैं, इसलिए, उक्त विचारों को अलग करना और स्वयं द्वारा विचार किए गए प्राचीन ग्रंथों में निहित प्रासंगिक प्रावधानों के वास्तविक प्रभाव का पता लगाना आसान नहीं होगा।

यह भी सर्वविदित है कि हिंदू विधि के प्रश्नों को निस्तारित करने में, प्रिवी काउंसिल ने न्याय, समानता और अच्छे विवेक के विचारों को पेश

किया और प्रासंगिक ग्रंथों की व्याख्या कभी-कभी इन विचारों से प्रभावित होती थी।वास्तव में, पिता के पूर्ववर्ती ऋणों के बाध्यकारी चरित्र के बारे में सिद्धांत और लेनदार द्वारा की जाने वाली पूछताछ के प्रावधान सभी समानता और निष्पक्षता के विचारों पर पेश किए गए हैं।जब प्रिवी काउंसिल ने *सूरज बंसी कोयर(2)* के मामले में दो प्रस्ताव रखे तो वास्तव में इसका उद्देश्य लेन-देन को चुनौती देने वाले देनदारों के पुत्रों द्वारा किए गए तुच्छ या कपटपूर्ण दावों के विरुद्ध वास्तविक विमुख व्यक्तियों की रक्षा करना था। चूंकि उक्त प्रस्ताव प्रामाणिक विमुख व्यक्तियों के दावों के साथ न्याय करने के उद्देश्य से रखे गए हैं, इसलिए हमें अकादमिक विचारों पर इस अच्छी तरह से स्थापित स्थिति को परेशान करने का कोई औचित्य नहीं दिखता है, जो शायद तब उत्पन्न हो सकता है जब हम प्राचीन के मार्गदर्शन की तलाश में हों। आज के संदर्भ में हमारी राय में, यदि हिंदू कानून की इस शाखाही के प्रशासन में कोई विसंगतियां हैं तो उनका समाधान विधायिका के पास है, न कि न्यायालयों के पास।टिप्पणीकारों ने अतीत में जो करने का प्रयास किया था, उसे अब विधायी प्रक्रिया को

अपनाकर प्रभावी ढंग से हासिल किया जा सकता है।इसलिए, हम अपीलकर्ताओं के इस तर्क को मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि हमें उनके द्वारा उठाए गए मुद्दे को पूरी तरह से प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के प्रकाश में तय करने का प्रयास करना चाहिए।

अब कुछ निर्णयों पर विचार करना बाकी है जिन पर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया था। *पुलवार्थी लक्ष्मणस्वामी व अन्य बनाम श्रीमत तिरूमाला पेद्दिन्ती तिरूवेंगला राघवाचार्युलु(1)* के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पिता द्वारा अपनी पोती की शादी के खर्चों को पूरा करने के लिए अपनी उपपत्नी को भुगतान के लिए निष्पादित वचन पत्र पर अनुबंधित ऋण पर विचार कर रहा था।बेटों को यह साबित करने में कोई कठिनाई नहीं हुई कि ऋण अनैतिक था,लेकिन ऋणदाता की ओर से आग्रह किया गया कि पुत्र तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि ऋण के अनैतिक चरित्र के बारे में ऋणदाता का ज्ञान स्थापित नहीं हो जाता और *सूरज बंसी कोएर(2)* के मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित दो प्रस्तावों पर स्पष्ट रूप से निर्भरता रखी गई थी। इस याचिका को उच्च न्यायालय ने खाहीरिज कर दिया था।न्यायाधिपति पतंजलि शास्त्री, जिन्होंने न्यायालय के लिए निर्णय सुनाया था कि "प्रिवी काउंसिल द्वारा की गई टिप्पणी में पिता के खिलाफ प्राप्त डिक्री के निष्पादन में बेची गई पारिवारिक संपत्ति का संदर्भ था, जिसके बारे में अलग-अलग विचार

उत्पन्न होते हैं, *प्रामाणिक* क्रेता डिक्री से आगे जाने के लिए बाध्य नहीं है"।दूसरे शब्दों में, यह निर्णय दर्शाता है कि जो सिद्धांत एक हिंदू पिता द्वारा अपने पूर्ववर्ती ऋणों को संतुष्ट करने के लिए किए गए हस्तांतरण पर लागू होते हैं, उन्हें आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है और उन

मामलों में लागू किया जाता है जहां बेटे उन ऋणों के बाध्यकारी चरित्र को चुनौती दे रहे हैं जो पूर्ववर्ती नहीं हैं और वास्तव में अनैतिक हैं।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय को कई मामलों में इस समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने का अवसर मिला है और कुछ निर्णयों में अलग-अलग, यदि कुछ हद तक विरोधाभासी नहीं, तो विचार लिए गए प्रतीत होते हैं।हालाँकि, हम केवल दो निर्णयों का उल्लेख करेंगे जो सीधे मुद्दे पर हैं। *किशन लाल बनाम गरुरुध्वज प्रसाद सिंह व अन्य(1)*के मामले में न्यायाधिपति बर्किट ने देखाही है कि यदि यह साबित हो गया है कि ऋण अनैतिक उद्देश्य के लिए अनुबंधित किया गया था और जिस व्यक्ति ने धन अग्रिम किया था, उसे उस उद्देश्य के बारे में पता था जिसके लिए इसे उधार लिया जा रहा था, तो इस हेतु बेटा उत्तरदायी नहीं होता।हालाँकि, विधि का यह एक सामान्य कथन है ओर फैसले में न्यायाधीश द्वारा निर्धारित प्रस्ताव के गुणों पर कोई चर्चा नहीं है और न ही इस बिंदु से संबंधित प्रासंगिक न्यायिक निर्णयों का हवाला दिया गया है।*महाराज सिंह बनाम बलवंत सिंह(2)* में वही उच्च न्यायालय श्योराज सिंह द्वारा पिता के पूर्व ऋणों का भुगतान करने के लिए बंधक के मामले में सुनवाई कर रहा था।छोटे भाई महाराज सिंह भी दस्तावेज़ के निष्पादन में शामिल हुए।हालाँकि, यह पाया गया कि उस समय महाराज सिंह नाबालिग थे और बंधक रखी गई संपत्ति में उनके हित के संबंध में बंधक बिल्कुल शून्य

था।यह निष्कर्ष बंधक रखी गई संपत्ति में महाराज सिंह की हिस्सेदारी के खिलाफ बंधकदार के दावे को खाहीरिज करने के लिए पर्याप्त था,लेकिन उच्च न्यायालय, महाराज सिंह द्वारा आग्रह किए गए वैकल्पिक आधार पर विचार करने के लिए अग्रसर हुआ और माना कि महाराज सिंह के लिए पूर्ववर्ती ऋण के अनैतिक चरित्र की सूचना साबित करना आवश्यक नहीं था, क्योंकि प्रश्न में संयुक्त परिवार की पैतृक संपत्ति उनके हाथों से नहीं गई थी। महाराज सिंह अपनी उपाधि का बचाव कर रहे थे,वह संपत्ति वापस पाने की मांग करने वाला वादी नहीं था, बल्कि पैतृक संपत्ति में अपने हित का रक्षक था, जिस पर उसका कब्जा था।इन टिप्पणियों से पता चलता है कि उच्च न्यायालय ने यह विचार किया कि *सूरज बंसी कोएर(3)* के मामले में निर्धारित प्रस्ताव बंधक के मामलों पर लागू नहीं होंगे बल्कि खरीद के मामलों तक ही सीमित थे।हमें नहीं लगता कि उक्त निर्णय में क्रय एवं बंधक के बीच किया गया अंतर सुस्थापित है।विचाराधीन प्रस्तावों में पिता के पूर्ववर्ती ऋण के भुगतान के लिए किए गए हस्तांतरण को उसी स्तर पर माना गया है, जिस स्तर पर उसके खिलाफ पारित डिक्री के निष्पादन में किया गया हस्तांतरण है और दोनों मामलों में सिद्धांत यह है कि बेटों को अपनी चुनौती में सफल होने के लिए पूर्ववर्ती ऋण के अनैतिक चरित्र और विमुख व्यक्ति व्यक्ति के ज्ञान को साबित करना होगा।दोनों प्रस्तावों को बताने में इस्तेमाल की गई व्यापक भाषा को ध्यान में रखते हुए, हमें नहीं लगता कि बंधक और बिक्री के बीच कोई वैध अंतर किया

जा सकता है, खाहीसकर बृज *नारायण(1)* के मामले में प्रिवी काउंसिल के फैसले के बाद। *उदमीराम कोरूडीमल व अन्य बनाम बलरामदास तुलाराम व अन्य(2)* के मामले में नागपुर उच्च न्यायालय ने यही विचार रखाही है।

परिणामस्वरूप अपील विफल हो जाती है, लेकिन इस मामले की परिस्थितियों में लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

अपील खारिज

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक अश्विनी शर्मा (न्यायिक अधिकारी) द्वारा किया गया है

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है ओर किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक ओर आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा ओर निष्पादन ओर कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।